



## औपन्यासिक परम्परा में आरंभिक प्रयोगधर्मी हिन्दी उपन्यास

डॉ. मुकेश कुमार

सहायक आचार्य

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कैराना, उत्तर प्रदेश, भारत

### भूमिका

हिन्दी उपन्यास का इतिहास आज से महज़ सौ वर्ष का ठहरता है। कविता एवं नाटक तो तब से हैं जब से मनुष्य ने बोलना सीखा। संगीत तथा नृत्य के बगैर तो मानव की कल्पना ही व्यर्थ मानी गयी है। बाद के दिनों में औद्योगिक समाज व्यवस्था के दबाव में मनुष्य इनसे (संगीत एवं नृत्य) अलग होकर यंत्र के निर्देशानुसार संचालित होने लगा। प्रकृति, संगीत, नृत्य से विलग, आधुनिक मनुष्य पुनः अपने राग को पाने के लिए भरपूर कोशिश करने लगा। इसी क्रम में उसने स्वयं को एक नयी विधा में अभिव्यक्त करने की कोशिश किया। इस नयी विधा में, जिसे उपन्यास कहा गया, पूरा अवकाश था - अपने आपको सम्पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए। वह इसमें अपने अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के बारे में स्वतंत्र होकर यथार्थमय सपने बुनने लगा था। लेकिन बाद के दिनों में उसकी यह स्वतंत्रता भी भंग हो गयी। विधागत अनुशासन के पालन में उसकी यह स्वतंत्रता छिन गई।

'जीवन को उसकी समग्रता' में अभिव्यक्ति के जिस लक्ष्य को लेकर उपन्यास की कल्पना की गयी थी, वह आरंभ में ही खण्डित होकर, बाह्य अनुशासन में जकड़ कर रह गया। वह मनुष्य के बाह्य जीवन का विवरणात्मक प्रस्तुति का

माध्यम बन गया। कारण यह कि मनुष्य को व्यापक एवं विस्तार में व्याख्यायित करने के लिए गंभीर कलात्मक प्रतिभा की आवश्यकता पड़ती है। इतना धैर्य रचनाकारों के पास नहीं था। वे उपन्यास के प्रत्येक पन्ने में कलात्मकता को बनाये रखने में असमर्थ थे। वे अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण पश्चिम की बँधी-बँधायी प्रविधि के आधार पर उपन्यास का निर्माण करने लगे। इससे उपन्यास अपने मूल लक्ष्य (समग्रता) से भटक गया। प्रविधि के 'बंधन' में विस्तार एवं सहजता की संभावना कम हो गई। शुरुआत के विमर्शों में उपन्यास को कविता (महाकाव्य), कहानी (गल्प), नाटक (नाट्य) से जोड़कर देखा गया था। लेकिन विधागत मर्यादा के पालन में उपन्यास धीरे-धीरे संकुचित हो मात्र विवरण बनकर रह गया। वह लम्बे-लम्बे विवरणों एवं वर्णनों तक संकुचित हो गया। उदाहरण के लिए - "अतिथियों का असबाब स्टेशन वेगन में रखा जा चुका था। विश्वनाथ सिंह इन लोगों को साथ लेकर स्टेशन से बाहर निकले। नवल सिंह बाहर बाल्टी में शर्बत लिये हुए खड़ा था और बाबू मिट्टन लाल हाथ जोड़े इन लोगों के पीछे-पीछे चल रहे थे।"<sup>1</sup>

उपन्यास पर चर्चा उसके कथानक, पात्र, चरित्र कथोपकथन, आरंभ, मध्य, अंत, उद्देश्य, देशकाल, शैली आदि को लेकर खूब हुई। लेकिन उसका



मनुष्य के जीवन.यथार्थ में कहाँ तक एवं किस प्रकार का हस्तक्षेप है, पर चर्चा नहीं के बराबर है। 'मृगनयनी' उपन्यास के बहाने ऐतिहासिकता पर बात करते हुए एक आलोचक ने लिखा है - "मानसिंह, गयासुद्दीन, राजसिंह सिकन्दर लोदी - जैसे स्थितिशील चरित्रों के विरोध में मृगनयनी, लाखी, अटल, कला, बैजू, बाबरा आदि के चरित्र विकसनशील प्रवृत्ति के द्योतक है ...कहीं-कहीं चरित्रों में स्थितिजन्य व्यग्रता, आशंका आदि नाटकीय है क्योंकि ये गति के लिए यथेष्ट सम्भावनाएँ जुटाते हैं। ....पात्रों के अन्तःसम्बन्धों में प्रतिद्वन्द्विता और तनाव है। ...बाह्य रूपाकार में महमूद बघर्षा नाटकीय चरित्र का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।"<sup>2</sup> कहने का आशय यह है कि सन्दर्भित उपन्यास का मूल्यांकन का आधार इतिहास एवं शास्त्रीय मानदण्ड रहे है। जिसके आधार पर इसे सफल या असफल उपन्यास घोषित किया गया।

प्रयोगधर्मी उपन्यास

'प्रयोग' 'सम्पूर्णता' को अभिव्यक्त करने की कोशिश है। कृतित्व को मानव.जीवन के साथ हू-ब-हू सम्पृक्त करने का प्रयास है कविता की तरह बर्फानी जड़ता को तोड़कर व्यक्ति के गहरे अन्तरतम की अनछुए पहलुओं को स्वर प्रदान करना है। जीवन के आरोह-अवरोह की नाटकीय गति को थम कर पहचाने का उपक्रम है। इसके लिए उपन्यास के पारंपरित ढाँचे को तोड़ना अनिवार्य हो जाता है। हिन्दी में ऐसा पहला प्रयास 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास में हुआ। इसे हिन्दी जगत का पहला आधुनिक उपन्यास माना गया, क्योंकि इसमें व्यक्ति के 'व्यक्तित्व' तथा 'चयन की स्वतंत्रता' को उपन्यास का मूल आधार बनाया गया है। होरी अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग नहीं था और न ही उसे किस प्रकार

की स्वतंत्रता प्राप्त थी। 'मृगाल (त्यागपत्र) अपने व्यक्तित्व को तलाशने का प्रयास करती है लेकिन पुरुषत्व के अधीन। 'शेखर' अपने व्यक्तित्व को लेकर सजग है तथा चयन को लेकर कमोबेश स्वतंत्र भी। 'शेखर' को 'युगीन' शेखर बनाने के लिए रचनाकार नयी भाषा एवं शैली को अपनाता है।

'शेखर : एक जीवनी' प्रत्यावलोकन आत्मकथन, डायरी, पत्र, कविता, गीत शैली में लिखा गया जीवनीपरक उपन्यास है। मृत्युबोध के नीचे दबा शेखर अपने जीवन की अंतिम परिणति में अर्थ सूत्रों को खोजने का उपक्रम करता है। वह विगत जीवन को याद नहीं करता, बल्कि उसे पुनः नए ढंग से जीने को कोशिश भी करता है। उपन्यास का पहला शब्द ही सनसनी और मानीखेज़ है - 'फाँसी'। यह शब्द पाठक को रहस्य, रोमांच, उत्सुक डर तथा अपार संभावना के द्वार खोल देता है। विजय मोहन सिंह भी 'शेखर: एक जीवनी' को पहला प्रयोगधर्मी उपन्यास मानते हैं।

- "हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में शेखर प्रयोगवाद तो नहीं, किन्तु पहला प्रयोगधर्मी उपन्यास था। शेखर हिन्दी का पहला आधुनिक उपन्यास है।"<sup>3</sup>

'शेखर : एक जीवनी' की भाषा एवं शैली सर्वथा नवीन है। विजय मोहन सिंह इसे नए प्रकार का गद्य मानते हैं। वे लिखते हैं कि - "शेखर में स्मृतिपटल पर अतीत के चित्र एक.एक करके आते.जाते हैं। ....दृश्यांकन इतना सघन और सूक्ष्म है कि वे कैमरे की आँख से देखे प्रतीत होते हैं, कहीं लांग शॉट, कहीं मिड शॉट और कहीं 'क्लोज़ अप' के रूप में। यह प्रविधि हिन्दी उपन्यास में आविष्कार थी।"<sup>4</sup>

आगे इसकी भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं - "इसमें एक साथ चित्रकला, संगीत तथा स्थापत्य कला.विधियों का अद्भूत संयोजन है ..



चित्रात्मक गद्य का प्रयोग अज्ञेय से पहले हिन्दी कथा-साहित्य में नहीं हो सका था। इसके अतिरिक्त उपन्यास में अनुभूतियों की भाषा लिखने वाले अज्ञेय हिन्दी के पहले गद्य लेखक है।<sup>5</sup> आगे लिखते हैं - “शेखर की प्रविधि मनोवैज्ञानिक - फ्री एसोसिएशन ऑफ आइडियाज़ वाले शिल्प से ली और दूसरी ओर उसमें प्रतीकवादियों वाली भाषा का अनुस्यूत कर एक अनोखे औपन्यासिक शिल्प का निर्माण किया।”<sup>6</sup>

आधुनिक मनुष्य विविध भावभूमियों पर एक साथ जीने लगा है। मनस्थितियों के बीच का अंतराल सीमट गया है। इनके बीच अंतराल संकुचित होने के कारण, मनुष्य का एक ही भाव स्थिति में लम्बे समय तक रहना संभव नहीं है। रचनकार इस स्थिति को समझ कर ऐसा प्रयोग करता है, जिससे मनुष्य अपनी पूरी बात कह सके। इसलिए उपन्यास में कहानी, कविता, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा सभी विधाएँ एक साथ सम्गुफित हो जाती हैं, जिससे उसकी अर्थवत्ता में विस्तार की पर्याप्त गुंजाइश बन जाती है। ‘शेखर एक जीवनी’ में भाषा की चित्रमयता देखते ही बनती है। - “जाड़ों का एक और प्रभात, वही क्रमशः धूसर, ताम्रलोहित, लाल और फिर सफ़ेद होनेवाली प्रातःकालीन, धुंध, फिर दिशाहीन आलोक, फिर अलसाई-सी पहली रविकिरण।” शेखर एक जीवनी की नवीनता पर रामदरश मिश्र लिखते हैं - “शेखर: एक जीवनी असाधारण स्थिति में एक असाधारण चरित्र का असाधारण संवेदन है। उपन्यास के रूप में इस संवेदन को जो संगठन मिला है, वह सर्वथा नवीन प्रयोग है।”<sup>7</sup>

“मेघाच्छन्न आकाश, प्रकाशहीन सायंकाल, पवन अचंचल, चंचला भी अदृश्य और उड़ते-उड़ते सहसा

पंख टूट जाने से विवश गिरता हुआ अकेला ही अकेला एक पक्षी, जो गिरता है और फिर अपनी उड़ान, अपना स्थान पा लेने के लिए छटपटा रहा है छटपटा रहा है।”<sup>8</sup>

उपर्युक्त पंक्तियों में निराशा (हताशा) का बिम्ब है। इसमें संगीत की तरह आवृत्ति है। विविध अन्तर्ध्वनियाँ हैं, नाटकीयता है और यह एक कविता भी है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार व्यक्ति के अंतरम के मनोभावों का चित्र बना देता है, जिसे पढ़ा देखा एवं महसूस किया जा सकता है। अज्ञेय भाषा एवं शैली में प्रयोग के माध्यम से एक आधी अधूरी जीवनी को व्यापक फलक पर चित्रित करते हैं जो अपने अधूरेपन के साथ अपार संभावनाओं के साथ पूर्ण है। विजयमोहन सिंह लिखते हैं - “शेखर एक महाकाय ही नहीं, महाकाव्यात्मक संरचना का उपन्यास है जिसमें यद्यपि केवल एक व्यक्ति की आधी-अधूरी जीवनी है लेकिन अपनी एक सम्पूर्ण ‘विश्वदृष्टि’ के कारण वह समग्र जीवन के मूलभूत प्रश्नों को समाविष्ट करता है।”<sup>9</sup> एक व्यक्ति के अपूर्ण संवेदनओं का विश्व की संवेदनाओं के साथ सम्पृक्त करना किसी भी रचनकार के लिए बड़ा चुनौती बन जाती है।

‘मुर्दों का टीला’ और ‘मृगनयनी’ उपन्यास क्रमशः 1948 एवं 1950 में लिखे गये। ऐतिहासिक उपन्यास है। ‘मुर्दों का टीला’ उपन्यास कल्पना के माध्यम से मृत लोगों (सैन्धव-हड़प्पा युगीन) की कथा कहता है। उपन्यास का फलक व्यापक था इसलिए उपन्यासकार के लिए कल्पना की ऊँची उड़ान भरने की पूरी गुंजाइश थी क्योंकि ‘हड़प्पा सभ्यता’ के बारे में अभी तक प्रामाणिक जानकारी पुख्ता नहीं है। ‘मृगनयनी’ में इतिहास की कथा कल्पना के सहयोग कही गयी है जबकि ‘मुर्दों का टीला’ में कल्पना को ऐतिहासिक आधार प्रदान



किया गया है। 'मुर्दों का टीला' का शिल्प कसा हुआ नहीं है। लम्बे-लम्बे विवरण उपन्यास में इतिहास का भ्रम पैदा करते हैं। इसमें रचनात्मक सौन्दर्य का अभाव है - "कला की दृष्टि से जो चारूता शिल्पगत सौन्दर्य एवं मोहकता 'दिव्या' में है वह मुर्दों का टीला में नहीं है।"<sup>10</sup>

'मृगनयनी उपन्यास में इतिहास, कल्पना एवं जनश्रुतियाँ इन तीनों का रोचक योग है। कल्पना के द्वारा रचनाकार इतिहास एवं जनश्रुतियों के बीच संतुलन बनाता है। लेकिन इसमें रचनात्मक सौन्दर्य का अभाव बताया गया है। उपन्यास विवरणात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास का आरंभ होता है - "आस-पास और दूर-दूर तक के गाँव उजड़ चुके थे। खेती का नामों निशान तक न बचा था। बीच-बीच में जंगल भी काट डाला गया था ....।" (मृगनयनी पृ. 1)। सपाटबयानी के कारण उपन्यास इतिहास अधिक बन गया है। ऐतिहासिक पात्रों की भरमार है। रामदरश मित्र ने लिखा है - "मृगनयनी में ऐतिहासिक तथ्यों पर अत्यधिक आग्रह है।"<sup>11</sup> कथ्य एवं शिल्प में भी गंभीरता नहीं है। संघर्ष एवं अनुभूति का वर्णन अन्तर्मन को छू नहीं पाता है। - "लेखक किसी गहन आत्ममंथन, सिलसिलेवार तनाव तथा वृहत्तर संघर्षविद्रोह के संदर्भों से न चरित्रों को सम्बद्ध करता है और न वस्तु तत्त्व को। सम्भवतः उसका लक्ष्य ऐतिहासिक तथ्यों की अनुरूपता में रोमांस की कथा कहना भर है।"<sup>12</sup>

यथातथ्य विवरण की प्रवृत्ति तथा वर्णन-बाहुल्य के कारण कलात्मकता नहीं आ पाती है - "दोनों एक-दूसरे से उलझ गई और देर तक उलझीं रहीं। उनको इस बात की परवाह नहीं थी कि ऊपर से कमर तक उधाड़ी हो गयी हैं। बाहर हुल्लड़ की आहट पाकर दोनों अलग हो गयीं। दोनों कीचड़

और गोबर से सन गयी थीं। दोनों के माथे, गालों और दूसरे अंगों पर गोबर की आड़ी-टेढ़ी चित्रकारी बन गयी थी। दोनों एक-दूसरे को देखकर बलखाते हुए हँस रही थी।"<sup>13</sup>

'दिव्या' सन् 1945 में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण गाथा है। इसमें 'मुर्दों का टीला', 'मृगनयनी आदि उपन्यासों की तरह इतिहास एवं आख्यान की परम्परागत शैली का निर्वात नहीं है। इसमें केवल कल्पना है, जिसके माध्यम से रचनाकार एक ऐतिहासिक वातावरण का सृजन कर, वर्तमान सामाजिक सवाल यथा, स्त्री, जाति, वर्ण, धर्म, सत्ता की विडम्बनात्मक स्थिति का चित्रण करता है। लेखक ने 'दिव्या' उपन्यास की भूमिका में स्वीकार किया है - "दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है।"<sup>14</sup> इसमें ऐतिहासिक सच्चाई नहीं है, लेकिन रचनाकार ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा से भाषा एवं शैली का ऐवी प्रभावी प्रयोग किया है, उसमें कुछ भी अनैतिहासिक नहीं लगता है। पात्र, घटनाएँ, वातावरण, संवाद-शैली आदि पूर्णतः यथार्थता का परिचय देता है। इस पर टिपण्णी करते हुए डॉ. गोविन्द ने लिखा है कि ... "इतिहास प्रयोग, शिल्प-विधान, चरित्रांकन और देशकाल चित्रण की दृष्टियों से निश्चय ही 'दिव्या' को श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है और यह उपन्यास इतिहासप्रयोग की एक नयी आदर्श पद्धति को प्रस्तुत करता है जो वृन्दावनलाल वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, चतुरसने शास्त्री आदि से भिन्न है।"<sup>15</sup>

उपन्यासकार अपनी कल्पना के सहारे सुदूर अतीत में जाकर तत्कालीन युग और जीवन का जो चित्र यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है, उससे उपन्यास सक्रिय एवं जीवंत हो गया है।

“आतुर और व्यग्रजन अभिव्यक्ति जनपद कल्याणी के दर्शनों के लिये कोलाहल कर रहा था। ...जन सहसा स्तब्ध हो गया। देवी ने अपनी उत्तराधिकारिणी के मस्तक से मुक्तावली का शेखर दूर कर जन को उसका दर्शन कराया और स्वयं जन के सम्मुख वन्दना के लिये नतजानु होकर मस्तक झुका दिया। जनसमूह श्वास रोके स्तब्ध नवीन जनकल्याणी की ओर दृष्टि लगाये थे। कुछ पल तक स्तब्धता रहने के पश्चात् अभिजातवर्ग की पंक्तियों से अस्पष्ट अस्फुट गुंजन सा उठने लगा।”<sup>16</sup>

उपर्युक्त वर्णन में नाटकीय, रहस्य, रोमांच, दृश्य, ध्वनि, चित्रात्मक का अद्भुत प्रयोग है। इससे उपन्यास स्वाभाविक एवं जीवंत बन गया है।

“जहाज का पंछी, बूंद और समुद्र तथा भूलेबिसरे चित्र” में आख्यान की परम्परा का निर्वाह है। कथा, सपाट ढंग से एवं विवरण की शैली में कही गई है। नाटकीयता, चित्रात्मकता, कलात्मकता, दृश्यात्मकता, कसावट, गंभीरता, जीवंतता का इसमें अभाव है। इनमें वर्णन अधिक कला कम है। अधिक विस्तार एवं वर्णनात्मक शैली के कारण रचना ऊबाऊ होने लगती हैं।

‘बूंद और समुद्र’ में आधी शताब्दी अपने राग-विराग को अभिव्यक्त करती है। राजेन्द्र यादव ने इसे ‘गोदान’ के बाद का उत्तर-भारतीय जीवन का दूसरा महाकाव्य घोषित किया है। ‘गोदान’ के बाद ‘बूंद और समुद्र’ को उत्तर भारतीय जीवन का दूसरा महाकाव्य कहा जा सकता है।<sup>17</sup> इसमें महाकाव्यात्मक फलक के बावजूद ‘वार एण्ड पीस’ की भाँति पात्रों एवं प्रसंगों की बीच आंतरिक अन्विति का अभाव प्रायः मिल जाता है। ‘अधूरे साक्षात्कार’ में इस पर विचार करते हुए नेमिचंद्र जैन ने लिखा है - “वह किसी भी प्रसंग को उठाकर उसके वर्णन के रस में स्वयं

इतने डूब जाते हैं कि सम्पूर्ण उपन्यास के सन्दर्भ में उसकी स्थिति और आनुपातिक सार्थकता का उन्हें ध्यान नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक छोटे-से-छोटा वर्णन भी स्वतंत्र रूप से अत्यन्त रोचक और चमत्कारपूर्ण हो उठता है और समग्र रचना की अन्विति को तोड़ देता है। .....यह असमता और अन्विति का अभाव उसमें शैली के स्तर पर भी लेखक की मुख्य पद्धति यथार्थवादी है पर बीच-बीच में वह अतिशयोक्ति और अयथार्थवादी युक्तियों को सहारा लेता है जिससे विसंगति पैदा होती है।”<sup>18</sup> अमृतलाल नागर ने इसमें किस्सागोई की शैली का सफल निर्वाह किया है, लेकिन वर्णन आधिक्य के कारण पाठक की तारतम्यता भंग हो जाती है। उदाहरण के लिए ये विवरणात्मक पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं - “ऊँची आधुनिक इमारतों की पाँत छोड़कर कर्नल की गाड़ी ने सड़क का चक्कर लिया। मोटरों की कतार दो निकट के चौराहों के बीच विश्राम कर रही थी। रोशनी, तड़क-भड़क, फैशन-स्टाइल, ज़नीनी-मर्दानी जवानी की चहल-पहल, हुस्न और रंग-गंध से गमकते दमकते हुए हजरत गंज का सुहाग तेज जाड़े की रात में अस्त हो चुका था।”<sup>19</sup> पूरे उपन्यास में ऐसे वर्णन प्रायः मिल जाते हैं, जिनसे उपन्यासकार बच सकता था। रामदरश मिश्र लिखते हैं - “कहीं-कहीं सतही विस्तार और किस्सागोई की शैली उपन्यास की गठन को शिथिल बना देती है। इतनी हावी हो जाती है कि उपन्यास बिम्बों से उभरने वाले संलिष्ट भाव-सत्यों की अभिव्यक्ति के स्थान पर सतही रस की सृष्टि करने लगते हैं।”<sup>20</sup>

‘जहाज का पंछी’ इलाचन्द्र जोशी का आत्मकथात्मक शैली में रचित मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ‘व्यक्तित्व’ का आदर्शात्मक परीक्षण कहा जा सकता है। इसमें सामाजिक संरचना के



निर्बल स्थलों को ठोक-ठोक कर उनकी रिक्तता को रेखांकित करने का प्रयास है। इसमें नायक अपने समाजवादी विचारों की रक्षा करने का प्रयास है। अधिक तत्पर नज़र आता है। 'भूले बिसरे चित्र' सन् 1959 में रचित एक महाकाय उपन्यास है, जिसमें चार पीढ़ियों की कथा है। इस उपन्यास का आरंभ इस्तगासा पढ़ने से होता है। मुंशी शिवलाल पढ़ते हैं एवं ठाकुर भूपसिंह सुनते हैं - "मन की भूप सिंह, वल्द अनुप सिंह उम्र तखीमन पच्चीस साल कौम ठाकुर, पेशा काशतकारी, सरकिन हाट बिशनपुर तहसील फ़तहपुर ..."<sup>21</sup> आगे दो पेज तक इस्तगासा चलता है। उसके बाद मुंशी शिवलाल की लम्बाई-चौड़ाई ऊँचाई...की चर्चा है। चार पीढ़ियाँ एवं उनके बदलते युग की कथा को उपन्यासकार संश्लिष्टता प्रदान नहीं कर पाया है। नेमिचन्द्र जैन इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं - "अन्ततः 'भूले बिसरे चित्र' बहु तसे स्वतः सम्पूर्ण और अपने-आप में रोचक चित्रों का पुंज बनकर रह गया है। प्रभाव की समग्रता भी उनमें नहीं है, और न वे जीवन की वास्तविक गति का ही सही-सही बोध पाठक को देते हैं। पूरा उपन्यास एक प्रकार से अनगिनत असम्बद्ध, अथवा शिथिल रूप में सम्बद्ध, चित्र-शृंखला जैसा है, और अन्त में जब वह समाप्त होता है तो हमें यह अनुभव नहीं होता कि हम सचमुच पचास वर्षों के एक घटना बहुल क्रांतिकारी तथा विविधापूर्ण कालखण्ड की यात्रा करके लौटे हैं।"<sup>22</sup> इस तरह यह उपन्यास अपनी समग्रता में भी प्रभाव नहीं छोड़ पाता है। साथ ही, भाषा सपाट एवं विवरणात्मक होने के कारण कलात्मक प्रभाव छोड़ने में उपन्यास सफल नहीं है। "इलाहाबाद के लाला घनश्याम दास जब ज्वाला प्रसाद के घर पहुँचे उस समय ज्वाला प्रसाद सुबह का नाश्ता

करके दफ़्तर जाने के लिए कपड़े पहन रहे थे। ज्वाला प्रसाद ने लाला घनश्याम दास को बैठक में बिठलाया और मन.ही.मन सोचने लगे कि लाला घनश्याम सुबह-सुबह उनके मकान पर क्यों आये।"<sup>23</sup> रामदरश मिश्र ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि - "भूले बिसरे चित्र में मानस की गहराइयों में उतरकर आवर्तों को नहीं पकड़ा गया है। यही बात भाषा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। ....इसमें भाषा के आवर्त, बिम्ब विधान और प्रतीकात्मकता के उभार के स्थान पर वर्णनात्मक विस्तार है।"<sup>24</sup>

सन् 1952 में रचित 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' एक नए तरह का उपन्यास बताया गया। इसमें सात अलग-अलग कहानियाँ हैं, जो अपनी सम्पूर्णता में एक बन जाती हैं। अज्ञेय भूमिका में लिखते हैं - 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है। वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचना है और जैसे उस समाज की अनन्त शक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत हैं वैसे ही उसकी कहानियाँ भी।"<sup>25</sup>

धर्मवीर भारती किस्सागोई की प्राचीन शैली में आधुनिक युग की यथार्थ कथा कहते हैं। उन्होंने इस शैली का उपयोग इस चतुराई एवं समझदारी के साथ किया है कि समाज की गंभीर एवं व्यापक समस्याओं को संक्षिप्तता के बावजूद पूर्णता से व्यक्त करते हैं "इन सवा.सौ पृष्ठों में भारती ने सवा.हज़ार पन्नों की बात कही है यह उनकी कला का सबसे बड़ा कमाल है।"<sup>26</sup> 'गागर में सागर' उक्ति को चरितार्थ करने वाले उपन्यास में सभी के लिए कुछ-न-कुछ है। और ऐसा संभव इसकी चमत्कारिक कलात्मकता के कारण ही संभव हुआ है। "लेखक ने इसमें सभी मजे दिए हैं, दुखांत चाहने वाले दुखांत का आनंद ले,



सुखांत चाहने वाले सुखांत का<sup>27</sup> अर्थात् इसमें कविता का भी आनंद ले सकते हैं तो कहीं-कहीं निबंध का भी। इसमें रोमांस, प्रेम, वासना, गरीबी, जलालत, हास्य, रोमांच, रहस्य का भी पाठक आनंद उठता है या गंभीर सोच में अपने को निमग्न पाता है।

सम्बंधित उपन्यास के शिल्प एवं विषय-वस्तु पर विचार करते हुए नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है - "सूरज का सातवाँ घोड़ा" की विषय-वस्तु नई नहीं है पर उसकी अनुभूति में नयापन और आत्मीयता है और उसे प्रस्तुत करने के ढंग में चमत्कार और अलौकिकता है।<sup>28</sup> इसमें कथा ऐसी सहज शैली में कही गयी है कि सामान्य जन अपने आपको इसमें सहज रूप से उपस्थित पाता है। प्राचीन समय से प्रचलित एवं लोकप्रिय शैलियों को इसमें अद्भुत प्रयोग किया गया है। अज्ञेय ने भूमिका में इसकी शैली पर विचार करते हुए लिखा था - "इसकी गठन बहुत सीधी, बहुत पुराने ढंग की बहुत पुरानी जैसा आप बचपन से जानते हैं - अलिफ़ लैला वाला ढंग, पंचतंत्र वाला ढंग, बोकेशियो वाला ढंग, जिसमें क्रिस्सागोई की मज़लिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है .....मौलिकता अभूतपूर्व, पूर्ण शृंखलाविहीन नयेपन में नहीं पुराने में नयी जान डालने में भी है और भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पड़नेवाले ढंग का बिलकुल नया और हिन्दी में अनूठा उपयोग किया है। और वह केवल प्रयोग कौतुक के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि वह जो कहना चाहता है उसके लिए यह उपयुक्त ढंग है।"<sup>29</sup>

प्रस्तुत उपन्यास के चरित्र (नायक) परम्परागत उपन्यासों की तरह 'टाइड' नहीं है। निम्न-मध्यवर्गीय मानसिकता से तैस मणिक मुल्ला कायर, डरपोक, व्यक्तित्वहीन बिना रीढ़

वाला का है। इसके माध्यम से उपन्यास कार समाज की झूठी नैतिकता, विवाह का खोखलापन, जीवन में फैली निराशा, कुंठा, अनास्था, क्षोभ, घुटन को उसके यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल है। ऐसा उसने एक नयी भाषा एवं शैली के अद्भुत प्रयोग द्वारा किया है। भारती अपनी शैली और भाषा के बारे में स्वयं टिप्पणी करते चलते हैं। हर नया अध्याय शुरू होने के पहले या बीच में भी लेखक स्वयं उपस्थित हो कथाक्रम के बारे में सफाई देता चलता है। अपने निवेदन में भारती ने कथा शैली के अनोखेपन पर विचार करते हुए लिखा है - "कथा-शैली भी कुछ अनोखे ढंग की है, जो है तो वास्तव में पुरानी ही, पर इतनी पुरानी कि आज के पाठक को थोड़ी नयी या अपरिचित-सी लग सकती है। बहुत छोटे-से चौखटे में काफ़ी लम्बा घटना-क्रम और काफ़ी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विव्हाता के कारण यह ढंग अपना बड़ा है।"<sup>30</sup> इस उपन्यास का नया शिल्प-विधान हिन्दी उपन्यास को एक नए रास्ते से परिचित कराता है। जिसे बाद के रचनाकारों ने अपने-अपने ढंग से अपनाया है।

'परन्तु' और 'यह पथ बंधु था' उपन्यास साठ के दशक में रचे गये थे। दोनों उपन्यासों में मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की विडम्बनाओं को चित्रित किया गया है। लेकिन प्रस्तुति का ढंग अलग-अलग है। 'परन्तु' की पूरी घटना मस्तिष्क में घटती है तथा उसका विकास एवं प्रवाह अमूर्त चेतना में होता है। इनमें पात्र सामाजिक क्रियाकलापों के बीच प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं हैं। वे ऐसी परिस्थितियों की कल्पना अपने मस्तिष्क में करते हैं। 'यह पथ बंधु था' में परम्परागत आख्यान की परम्परा की निर्वाह है। शैल्पिक उपलब्धि या प्रयोग की गुंजाइश इसमें



नहीं है। सामाजिक व्यवस्था में आयी मूल्यहीनता, संयुक्त परिवार का टूटना, देश एवं समाज की खोखली राजनीति, व्यक्ति का अपने आदर्शों से दूर होना तथा घिनौने स्वार्थों के पीछे पड़े रहना और इसे एक व्यक्ति की जीवन यात्रा के माध्यम से दिखाया गया है। 'श्रीधर' की यात्रा वास्तव में हमारे बदलते समाज का चित्र है। इसमें विभिन्न पड़ाव आते हैं एवं प्रत्येक पड़ाव के बाद श्रीधर एक नयी स्थिति का सामना करता है। अंततः वह अपने पूर्व स्थान (गाँव) पर लौट आता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त उपन्यासों के विश्लेषण का उद्देश्य यह दिखलाना रहा है कि एक विषय पर घटित कथानक को कैसे एक ही समय में अलग-अलग ढंग से कथाकारों द्वारा अभिव्यक्त किया गया। बदलते जीवन मूल्यों और सामाजिक विडम्बनाओं को चित्रित करने के लिए उस समय मुख्यतः दो तरीके उपन्यासकारों ने अपनाये। पहले वर्ग में वे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने 'वर्तमान' को व्याख्यायित करने के लिए परम्परागत आख्यान की परम्परा को ही आगे बढ़ाया। मसलन, उपन्यास में आरंभ, मध्य, अंत, कथा, उप-कथा, चरित्र, पात्र, कथोपकथन, देश-काल, उद्देश्य या उपन्यास के लिए निर्धारित सात-आठ तत्त्वों को आधार बनाया गया है। वह यह भी माँग करते हैं कि उनके उपन्यासों का मूल्यांकन उपर्युक्त निर्धारित तत्त्वों के आधार पर किया जाय। उनका दावा यह भी रहा कि उनके उपन्यास वर्तमान जीवन संवेदनाओं को हुब-हु रूपायित करते हैं अर्थात् समकालीन बोध से अछूते नहीं हैं। लेकिन हुआ यह कि इन उपन्यासों में जीवन एवं समाज के बाह्य हलचलों की सपाट एवं विवरणात्मक अभिव्यक्ति मिली। इसमें व्यक्ति

अपने पूर्णत्व के साथ उपस्थित नहीं हो पाया है। उसका अंतरंग संसार इन उपन्यासों में उपस्थित नहीं हो पाया। वह बाहर से ही हँसता या रोता दिखाई देता है। परिणाम यह हुआ कि ये परम्परागत उपन्यास व्यक्ति के अंदर आये बदलाओं को अभिव्यक्त नहीं कर पाये, उसके साथ-साथ नहीं चल पाये। व्यक्ति (पाठक), समाज एवं कथा निर्मित के बीच लम्बी दूरी बन गयी थी।

इस दूरी को पाटने के लिए कुछ रचनाकारों ने एक नयी पहल की। उन्होंने भाषा एवं शैली में बदलाव (प्रयोग) और उसे सशक्त बनाकर व्यक्ति के अन्तरतम तक पहुँचाने का प्रयास किया। इस क्रम में उन्हें उपन्यास के लिए पूर्वनिश्चित मानदंडों को तोड़ना पड़ा। पूँजीवादी एवं उत्तर-आधुनिक समाज ने व्यक्ति के 'व्यक्तित्व' को खण्डित एवं अनिश्चित बना दिया है। कुछ भी स्थिर एवं सत्य-असत्य नहीं हैं आज का सत्य कल असत्य हो सकता है। विडम्बना यह कि व्यक्ति सोचता क्या है और करता क्या है, वह कुछ नहीं समझ पाता है। वह अपने 'स्वयं' के बारे में कुछ निश्चित कहने में असमर्थ है। उसे यह पता नहीं है कि वह क्या है, उसके भीतर की दुनिया कैसी है, उस संसार में उसका कोई तारतम्यता है कि नहीं। वह द्वन्द्व, अनिर्णय और तनाव की स्थिति में है। ऐसे व्यक्ति एवं समाज को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास को एक नयी भाषा एवं शैली की आवश्यकता महसूस की गयी, ताकि उसे निर्बाध एवं यथार्थ में अभिव्यक्त किया जा सके। इस लिए प्रयोगधर्मी उपन्यासों में लगभग सारी साहित्यिक विधाएँ धुल-मिल गयी हैं। पत्र, कविता, निबंध, कहानी, यात्रा संस्मरण, रेखाचित्र आदि विधाएँ एक ही उपन्यास में अभिव्यक्त होने लगीं। कहीं



कथा कोरा (आत्म) आलाप बन जाती है तो कहीं गंभीर विवेचन, कहीं संगीत के राग से आबद्ध, कहीं काव्यात्मक, कहीं सीधी सपाट दौड़ती है तो कहीं असाधारण होकर नाटकीयता की सृष्टि करने लगती है। वास्तव में, आज के जीवन का यही सत्य है और उसी सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए रचनकार रचना में अनवरत प्रयोग करता है।

परम्परागत और आधुनिक दोनों दृष्टियाँ साथ-साथ चली। लेकिन आज न उनमें फिर से परिवर्तन देखा जा रहा है। आख्यान की परम्परा के निर्वाह की प्रवृत्ति कम हो रही है तथा प्रयोग की नयी प्रवृत्ति बढ़ रही है। 'शेखर: एक जीवनी' से लेकर सन् 2000 में लिखित प्रयोगधर्मी उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास' तक के उपन्यासों में आख्यान का प्रयोग भी एक नए रूपाकार में लक्ष्य किया जा सकता है। सफल एवं लोकप्रिय होकर हमारे संवेदनाओं एवं यथार्थ के अभिव्यक्त करने में समर्थ भी रहे ऐसे उपन्यासकार हैं।

संदर्भ ग्रंथ

- 1 भगवतीचरण वर्मा, सामर्थ्य और सीमा, पृ.49
- 2 प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में नाटकीय तत्त्व, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, पृ.140
- 3 प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में नाटकीय तत्त्व, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, पृ.140
- 4 वही, पृ.134
- 5 वही, पृ.135
- 6 वही, पृ.133
- 7 हिन्दी उपन्यास: एक अंतर्गता, पृ.92
- 8 शेखर: एक जीवनी-पृ, पृ.5,7
- 9 कसौटी - 15, पृ.131
- 10 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, डॉ. गोविन्दजी, कल्पना प्र., मेरठ, पृ.299

- 11 ऐतिहासिक उपन्यासकार, रामदरश मिश्र, पृ.103
- 12 प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में नाटकीय तत्व, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा
- 13 मृगनयनी, पृ.20
- 14 दिव्या, प्राक्कथन से
- 15 वही, पृ.288
- 16 दिव्या, पृ.195
- 17 अठारह उपन्यास, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का मूल्यांकन, पृ.59
- 18 अधूरे साक्षात्कार, पृ.67, 68
- 19 बूँद और समुद्र, पृ.85
- 20 हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.148
- 21 भूले बिसरे चित्र, पृ.7
- 22 अधूरे साक्षात्कार, पृ.84
- 23 वही, पृ.132
- 24 हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.153
- 25 सूरज का सातवाँ घोड़ा, भूमिका, पृ.9
- 26 अठारह उपन्यास, पृ.95
- 27 वही, पृ.98
- 28 अधूरे साक्षात्कार, पृ.120
- 29 सूरज का सातवाँ घोड़ा, भूमिका, पृ.8
- 30 सूरज का सातवाँ घोड़ा, निवेदन से, पृ.11